असमा हुसैन
एम0ए0, नैट क्वालीफाईड
प्रवक्ता
राजनीति विज्ञान विभाग
मुन्नालाल एण्ड जयनारायण खेमका गर्ल्स
कालिज, सहारनपुर।

मुस्लिम महिलाओं के अधिकार व स्वतन्त्रता (इस्लाम की नजर से)

देश के प्रथम प्रधानमन्त्री पंडित नेहरू का कथन है कि ''महिलाएँ परिवार की नींव हैं, परिवार समुदाय की तथा समुदाय समाज की'। यह कथन सिद्ध करता है कि महिलाएँ समाज का आधार हैं, अतः जिस समाज में महिलाओं का समुचित मान-सम्मान होता है, वह समाज व राष्ट्र एक आदर्श और उन्नतिशील समाज बन सकता है, यह बात मुस्लिम समाज के सन्दर्भ में भी लागू होती है।[1]

इस्लाम पर आधारित मुस्लिम समाज यद्यपि एक ईशवर की सन्तान जनित होने के कारण समानता, समता, परस्पर सहभागिता व समान न्याय व्यवस्था पर आधारित है, किन्तु व्यावहारिक रूप से मुस्लिम सामाजिक व्यवस्था पुष्श निर्मित व्यवस्था ही है, यहीं कारण है कि मुस्लिम महिलाएँ भी पुष्श सत्तात्मक दृष्टिकोण व पुष्शों के दासत्व भाव के दम्भ से अछूती नहीं रहीं, इस्लाम के अन्तर्गत महिला एवं पुष्श अधिकारों में कोई भेदभाव न किये जाने पर भी, सर्वाधिक मुस्लिम महिला पुष्श के शोषण व दमन का शिकार हुई। मुस्लिम महिलाएँ पर्दा प्रथा, अशिक्षा बहु-पत्नी प्रथा तलाक जैसी रूढ़िगत परम्पराओं के कारण प्रारम्भ से ही अपने ईश्वर प्रदत्त अधिकारों, वैचारिक स्वतन्त्रता व स्वायत्तता से वंचित होकर सदा से कुंठित व अन्धकारमयी जीवन व्यतीत करती आई हैं। विशव मानव अधिकार आयोग के प्रयासों के फलस्वरूप महिला अधिकारों व स्वायत्तता का जो दीप प्रज्जवलित हुआ, उसका प्रकाश अब मुस्लिम महिलाओं के अन्धकारमयी जीवन को भी दीप्ति कर रहा है। पिछले कुछ दशकों से मुस्लिम उदारवादियों का दृष्टिकोण बदलने लगा है और उन्होंने महिलाओं को शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकार व स्वायत्तता करने की पहल की है, मन्द गति ही सही पर अब मुस्लिम महिलायें भी पुरुषों के समान भागीदारी व सहभागिता सुनिश्चित करने हेतु प्रयत्नशील हैं।

इस्लाम के मूलाधार 'कुरान' में अंकित ईश्वरीय आदेश (अहकाम-ए-खुदा) व शरीअत के अनुरूप महिलाओं को पुरुष वर्ग के समान पूर्ण वैचारिक स्वतन्त्रता व स्वायत्तता प्रदान की गई है। महिलाओं को

इस बात का पूर्ण अधिकार है कि वें पुरुशों के समान सांसारिक व पारलौकिक, धर्म एवं अध्यात्मवाद जैसे सन्दर्भों में शरीअत की मर्यादाओं के अनुकूल अपने विचार व राय देने का पूर्ण अधिकार है। इसी प्रकार इस्लाम के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जो यह सिद्ध करते है कि मुस्लिम महिलाओं को यह अधिकार है कि यदि सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक व राजनीतिक मसलों पर पुरुष के विचार उचित न हों तो वे उसका विरोध कर सकती है।[2]

पैगम्बर हजरत मोहम्मद साहब की पत्नी आयशा (रजीअल्लाहताला अनहा) उनसे धार्मिक व सामाजिक मसलों पर बराबर से विचार-विमर्श किया करती थी। इसी प्रकार एक घटना के अनुसार हजरत उमर (धार्मिक दूसरे खलिफा गुरु) ने एक सभा में भाशण देते हुए कहा है कि ''ऐ लोगों (पुरुष) तुमको प्रतिबन्धित किया जाता है कि औरतों के महर ज्यादा न बाँधो। हजरत उमर की इस तकरीर (भाषण) पर एक महिला ने भरी सभा में, खुलेआम इसका विरोध किया और कहा कि ऐ हजरत अल्लाहताला (ईशवर) ने फरमाया है कि शौहर अपनी बीवी को महर में एक कतार (बहुत सारी सम्पत्ति जायदाद) भी दे सकता है, तब आप किस तरह इस पर रोक लगा सकते है।''[3]

हजरत उमर ने उस महिला की बात गौर से सुनी तथा उस महिला का कोई विरोध न करते हुए शान्त हो गये। इस्लाम के इतिहास में इसी प्रकार के अनेक उदाहरण विद्यमान है जो यह उद्घटित करते हैं कि महिलाओं को पुरुषों के समान पूर्ण वैचारिक स्वतन्त्रता व अधिकार प्राप्त हैं।

इस्लाम के अन्तर्गत पुरुष व महिला दोनों के लिये 'काफ़ा' (समान) शब्द प्रयुक्त किया गया है।[4] यह इस तथ्य का द्योतक है कि इस्लाम में महिला एवं पुरुष में किसी प्रकार का अन्तर नहीं किया गया। इसी प्रकार हज़रत उमर (धार्मिक पैगम्बर) का कथन है, जिसका उल्लेख इस्लाम की हदीस बुखारी-शरीफ में मिलता है कि-

''हम लोग (पुरुष) अहद-ए-जिहालत[5] में औरतों को कोई चीज नहीं समझते थे। जब इस्लाम का ज़हूर (प्रादुर्भाव) हुआ और अल्लाहताला (ईश्वर) ने औरतों का जिक्र किया, तब हमने समझा कि हम पर औरत का क्या हक़ है।''[6] हजरत मोहम्मद साहब का कथन है कि-

''औरतें तुम्हारे लिये सरमाया-ए-सुकून है, इसलिये इनकी ख्वाहिशात (इच्छाओं) का ध्यान रखो, उन्हें इज्जत बख्शो, जब तुम खाओ, तो उन्हें भी खिलाओं, जब तुम कपड़ा पहनो तो उसको भी पहनाओं। उसके चेहरे पर न मारो और न ही उसे बुरा-भला कहो।''

उक्त दृश्टिकोण यह सिद्ध करता है कि पुरुषों को चाहिए कि वह महिलाओं के प्रति सम्मान युक्त सहज व्यवहार करें, किसी भी प्रकार से उन्हें यह अधिकार नहीं है कि वह महिलाओं के साथ शोशण,

अन्याय व अमानवीय व्यवहार करें। इसके अतिरिक्त इस्लाम के अन्तर्गत महिलाओं को विवाह, विवाह उपरान्त वैवाहिक जीवन में पूर्ण अधिकार व स्वतन्त्रता, सम्पत्ति पर अधिकार, महर, नफका व तलाक जैसे अधिकार प्रदान कर उसकी प्रस्थिति व भूमिका को सुदृढ़ बनाने का प्रयास किया गया। इस्लाम में महिलाओं को प्रदान कुछ प्रमुख अधिकार निम्नवत हैं-

विवाह के समय महिलाओं को प्राप्त प्रमुख अधिकार

इस्लामिक कानून व शरीअत के अन्तर्गत किसी (पिता-संरक्षक) को यह अधिकार नहीं है कि बालिग कन्या विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी पुरुश के साथ कर दे, यानि विधि शास्त्र तथा शरीअत के नियमानुसार महिलाओं को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अपना विवाह धार्मिक मर्यादाओं व विधि में निर्धारित शर्तों के अनुसार अपनी इच्छा व पसन्द से कर सकती है।

विवाह की आयु के सम्बन्ध में इस्लाम में एक महिला अथवा पुरुष बालिग (व्यस्क) होने पर या उसके बाद विवाह की संविदा में प्रवेश कर सकता है।[7] इस प्रकार इस्लाम में बाल-विवाह को मान्यता प्रदान नहीं की गई।

एक मुस्लिम कन्या का पिता, पितामह या कोई अन्य संरक्षक इसकी इच्छा के विरूद्ध अथवा बालिग होने से पूर्व यदि उसका विवाह कर भी दे तो कन्या या महिला को यह अधिकार है कि वह अपना निकाह रद्द कर दे।

विवाह उपरान्त महिलाओं द्वारा अर्जित अधिकार

विवाह उपरान्त यद्यपि एक मुस्लिम महिला पति के प्रति दो अधिकारों से संविदा के तहत सशर्त बन्ध जाती है कि-

1. पति, पत्नी के साथ लैंगिक सम्भोग का अधिकारी है।
2. वह अपने पति का घर उसकी अनुमति के बिना नहीं छोड़ेगी।

पति के प्रति मुस्लिम महिला के इन अधिकारों के अतिरिक्त ज्यों ही विवाह संविदा होती है मुस्लिम महिला बहुत से अधिकारों का सृजन करती है,[8] कुरान द्वारा प्राप्त महिलाओं के इन समस्त अधिकारों का उल्लेख इस प्रकार है-

एक मुस्लिम महिला को पति द्वारा निर्धारित महर, नगद धनराशि, किसी कीमती वस्तु, चल व अचल सम्पत्ति के रूप में प्राप्त करने का शक्तिशाली अधिकार प्राप्त है-

कुरान के अनुसार-''विवाह पर महिलाओं को उनका महर स्वतन्त्र उपहार के रूप में दो।''

(कुरान सूरा-4 : आयत : 4)

‘‘यदि तुमने (पुरुषों) विवाह में या विवाह के उपरान्त पूरा महर पत्नी को दिया था, तो उसका छोटा टुकड़ा भी वापस न लो।’’ (कुरान सूरा : 4 आयत : 20)

इस्लाम के प्रार्दुभाव से पूर्व अरब समाज में ऐसी प्रथाएँ अवश्य थी, जब पत्नी को सदक (दान) के रूप में दिया जाता रहा है तथा पत्नी के संरक्षक अथवा माता-पिता महर की राशि कन्या मूल्य के रूप में स्वयं ले लेते थे, परन्तु हजरत मोहम्मद साहब ने इस प्रथा में सुधार किया तथा पति द्वारा पत्नी को महर का भुगतान किया जाना अनिवार्य कर दिया। इस प्रकार विश्व के मानव इतिहास में इस्लाम में सर्वप्रथम महर के रूप में प्रदान धनराशि के माध्यम से महिलाओं को आर्थिक रूप से सबल बनाने का प्रयास कर समान स्तर व सम्मान प्रदान किया। महिलाओं के क्रय-विक्रय को अवैध घोषित कर उनका वस्तु के रूप में उपभोग पर भी प्रतिबन्ध लगाया गया। कुरान में स्पष्ट आदेश है कि ‘‘महिलाओं के साथ कृपालुता और समानता के साथ रहो।’’ (कुरान सूरा : 4 आयत : 19)

महर को सदक, सदाकत, निहलात, अतिया, तथा अक्र भी कहा जाता है।[9] महर एक दायित्व है, जो पत्नी के सम्मान व उसे आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से पति द्वारा एक दायित्व के रूप में निभाया जाता है। सामान्य व स्वस्थ परम्परा के रूप से महर की निर्धारित धनराशि पति के साधन के अनुपात में निर्धारित की जाती है, मुस्लिम समाज में तलाक (विवाह-विच्छेद) पर नियन्त्रण लगाने हेतु महर एक अहम आधार माना गया। स्वयं पैगम्बर ने अपनी एकमात्र जीवित पुत्री फातिमा को विवाह में 500 दिरहम तय-शुदा महर पर हजरत अली को दिया था, कुछ मुस्लिम विद्धान इसे महर की निम्नतम सीमा मानते हैं तथा कुछ विद्वान इसे अधिकतम सीमा के रूप में स्पष्ट करते हैं। महर का निर्धारण प्रस्थिति प्रतीक भी माना जाता है। इस प्रकार कुरान के अनुसार पुरुष वर्ग को आदेि-त किया गया कि वह महर के बिना विवाह नहीं कर सकता, साथ ही यह भी निर्देशित किया गया कि ‘पुरुषों को चाहिए कि वह महर की अदायगी पूर्ण खुशदिली से करें। यदि किसी कारणवश कोई पुरुष अपनी पत्नी से अलग रहना चाहता है तो भी यह आवशयक है कि वह पत्नी को महर व उसकी आवश्यकता का समस्त समान दे दें। क्योंकि नफका (भरण-पोशण) का दायित्व पुरुष पर वाजिब है।

भोजन, वस्त्र तथा पत्नी के लिये रहने का भवन देना पति पर आबद्ध कर होता है।[10]

‘फिकह’ कुरान व हदीस के आधार पर चार शर्ते पति के लिये अनिवार्य हैं जो उसे पत्नी को प्रदान करनी हैं-

1. पति, पत्नी को ऐसा मकान दे जो उसकी आर्थिक स्थिति के अनुकूल हो।
2. उस मकान में वह सब चीजें हो जो शरअन (नियमानुसार) पत्नी के लिये आवश्यक है।

3. पत्नी के लिये मकान ऐसा हो जहाँ वह सन्तुष्ट रह सके।
4. जो भवन पत्नी के रहने के लिये दिया गया है, वह उसके लिये मखसूस (सुरक्षित) होना चाहिए।[11]

एक मुस्लिम पत्नी घर का कार्य करने से इनकार करने का अधिकार भी रखती है।

यदि पत्नी पति द्वारा यात्रा पर ले जाई जाती है तो पत्नी, पति से व्यय पाने का अधिकार रखती है।

यदि पति, पत्नी के भरण-पोषण की व्यवस्था नहीं करता है तो पत्नी उसकी अनुमति के बिना, पति की सम्पत्ति से व्यय निकाल सकती है, यदि यह भी सम्भव नहीं है तो वह पति की आज्ञा के बिना अपनी आजीविका अर्जन करते हुए बाध्यकर है तथा ऐसी स्थिति में पत्नी के लिये यह भी बाध्यकर नहीं होगा कि वह अपने पति की आज्ञा माने जबकि वह स्वयं आजीविका अर्जित कर रही है।

यदि एक पुरुश के एक से अधिक पत्नी हैं तो कुरान-ए-मजीद के अनुसार पति का फर्ज (दायित्व) है कि वह सभी पत्नियों के साथ सहज व समान व्यवहार करे तथा बराबर का समय दोनों के साथ व्यतीत करे।[12]

इस बात से स्पष्ट है कि इस्लाम बहु-पत्नी प्रथा को मान्यता प्रदान करता है, इस सन्दर्भ में हजरत मोहम्मद का कथन है कि ‘‘यदि तुम एक से अधिक विवाह करना चाहते हो तो पहले यह जान लो कि अपनी सभी पत्नियों के समान सामाजिक-आर्थिक सुरक्षा, भरण-पोषण, समान व्यवहार एवं न्याय प्रदान कर सकते हो अथवा नहीं। यदि सभी पत्नियों को समान हक (अधिकार) दे सकते हो तभी तुम्हारे एक से अधिक विवाह जायज हैं।’’[13]

उक्त सन्दर्भो के आधार पर यह स्पष्ट किया जा सकता है कि इस्लाम के अन्तर्गत महिलाओं को पुरुषों की भांति विवाह व दाम्पत्य सम्बन्धी बराबरी के अधिकार प्राप्त हैं। इस्लाम संगठित व कल्याणकारी समाज के निर्माण पर बल देता है इसी कारण इस्लाम पारिवारिक जीवन की सुदृढ़ता हेतु महिला एवं पुरुष दोनों का समान स्तर और सुख प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करता है तथा इस्लाम की मान्यता है कि पति-पत्नी के रूप में महिला व पुरुष दोनों का यह कर्तव्य है कि वें एक-दूसरे द्वारा किये जा रहे सेवा कार्य में हाथ बटाएँ।

पत्नी के रूप में महिला की अभिरक्षा करना पति का दायित्व है इसी कारण उसे पत्नी का संरक्षक माना गया, संरक्षक के रूप में पति को यह अधिकार है कि वह गल्ती करने पर पत्नी का सुधार करे, किन्तु इसका तात्पर्य बिल्कुल नहीं है कि उसके साथ बर्बर व क्रूरतापूर्ण व्यवहार करे।

इस प्रकार यदि इस्लाम व कुरान के सभी उपबन्धों को सामूहिक रूप से विश्लेशित किया जाए तो सिद्ध होता है कि सभ्य, सुसंस्कृत व संगठित समाज की संकल्पना को पूर्ण करने हेतु विवाह, दाम्पत्य व परिवार के स्थायित्व हेतु नियन्त्रण के विभिन्न साधन तथा नीति-निर्धारण किया गया वह पाश्चात्य समाज की व्याख्या से भिन्न थे जिनके फलस्वरूप यह धारण व्यक्त की गई कि इस्लाम महिलाओं की स्वतन्त्रता व स्वायत्तता विरोधी है, यह अवशय निश्चित है कि पाश्चात्य समाजों की महिलाओं के समान मुस्लिम समाज की महिलाएँ पूर्ण स्वतन्त्र व पुरुषों के बराबरी की नहीं, फिर भी यदि पाश्चात्य समाज व संस्कृति पर दृष्टिपात किया जाये तो अपेक्षकृत वहाँ विवाह तथा परिवार जैसी संख्या पूरी तरह ढह गई हैं। परिवार, विवाह व सन्तानों की वैधता के नाम पर वहाँ कुछ भी स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ता, वहाँ पर सांस्कृतिक मूल्यों का क्षरण व नैतिक पतन के लक्षण साफ दिखाई पड़ रहे हैं। अतः ऐसी स्वतन्त्रता जो व्यक्ति, धर्म समाज का ह्रास करें किसी भी समाज के लिये उपयोगी नहीं, पूर्ण समानता की बात तो प्राकृतिक रूप से नहीं की जा सकती।

इस्लाम के अन्तर्गत स्पष्ट रूप से निर्देशित किया गया कि दाम्पत्य जीवन सहज भाव प्रेम तथा आत्मीयता से व्यतीत करना यदि मुश्किल हो जाये या पति पत्नी से अलग रहना चाहता हो तो उसे चाहिए कि वह उसके भरण-पोषण की व्यवस्था करें, बिना किसी शारीरिक व मानसिक प्रताड़ना से अलग हो जाए। अलगाव की स्थिति में यदि पत्नी तलाक लेना चाहे तो वह उसे तलाक दे सकता है, ताकि यदि पत्नी चाहे तो दूसरा विवाह कर सके। इस प्रकार इस्लाम में परितयक्ता एवं विधवाओं के पुनर्विवाह को भी मान्यता प्रदान की गई है। जिस प्रकार पुरुषों को यह अधिकार है कि वह पत्नी को तलाक दे सकते हैं, उसी प्रकार महिलाओं को भी यह अधिकार है कि कुछ कारणों से वह पति से तलाक माँग सकती है। जिन कारणों से एक महिला काजी-ए-शरीअत (धार्मिक न्यायाधीश) की अदालत के समक्ष जाकर विवाह के बन्धन से मुक्त हो सकती है, वह निम्नवत है-

1. यदि वह अपने को अव्यस्क घोषित करे, जबकि उसके अभिभावक द्वारा उसका विवाह व्यस्क मानकर किया गया हो।
2. पति बराबरी (समानता) का न हो (यह समानता आयु स्वास्थ्य, सम्पत्ति, सामाजिक प्रस्थिति, शारीरिक क्षमता व बनावट तथा व्यवसायिक रुचि की न हो।)
3. पति लम्बे समय से लापता हो।
4. यदि पति लापता न हो पर अधिकतर गायब रहता हो।
5. पति पागल हो।

6. पति नामर्द हो।
7. पति कुश्ठ (कोढ़) रोगी हो।
8. पति भरण-पोषण के व्यय में असमर्थ हो।
9. भरण-पोषण करने की स्थिति में होते हुए भी भरण-पोषण न करता हो।
10. महिलाओं के उन अधिकारों का हनन करता हो जो उसे धर्म व शरीअत के अन्तर्गत प्रदान किये गये हैं।
11. महिलाओं को प्राप्त अधिकारों की पूर्ति की उसमें क्षमता न हो।
12. पति बदचलन हो।
13. शारीरिक व मानसिक रूप से प्रताड़ित करता हो, गाली-गलौच व मारपीट करता हो, पत्नी को पति से जान का खतरा हो।
14. अधर्म करता हो, शराब पीकर ऐसा मस्त हो कि धर्म-कर्म में रूकावट पड़ती हो।
15. अधर्म करने पर बाध्य करता हो।
16. नास्तिक हो गया हो।

उक्त कारणों के फलस्वरूप मुस्लिम महिलाओं को पूर्ण अधिकार है कि वह अपने पति से तलाक लेकर स्वेच्छा से स्वतन्त्र जीवन व्यतीत कर सकें तथा अपनी पसन्द के किसी अन्य पुरुष से विवाह कर सकें।

इस प्रकार इस्लाम, कुरान व शरीअत के अन्तर्गत मुस्लिम महिलाओं को प्रदान अधिकारों उनकी पूर्ण वैचारिक स्वतन्त्रता, स्वायत्तता की परिप्रेक्ष्य में अब यह कहा जा सकता है कि मुस्लिम महिलाओं की प्रस्थिति-भूमिका व उनके अधिकार किसी प्रकार पुरुषों से कम नहीं। इस्लाम का इतिहास साक्षी है कि ईश्वर ने महिलाओं व पुरुषों में कोई अन्तर नहीं किया और न ही किसी के अधिकारों का हनन, फिर क्यों मुस्लिम महिला विशमता, उत्पीड़न अनादर तथा अन्याय को प्रश्रय देने वाली पुरुष निर्मित व्यवस्था के अधीन हो गई। महिला एवं पुरुष सृजन के प्रारम्भ काल से ही साथ रहने आए हैं, उनका संसर्ग मानव समाज के वर्धन हेतु आवश्यक है, दोनों का संग सामाजिक जीवन का ध्रुव केन्द्र है।

आज चेतना का विचार युग है। सम्पूर्ण विश्व में महिलाओं व पुरुषों के मध्य अधिकार द्वन्द्व प्रारम्भ हो गया है, 21वीं सदी में यह नई सामाजिक चेतना है। अतः अब मुस्लिम महिलाओं को भी चेतना होगा, युग की धारा व कट्टरपन्थी उलेमाओं के विचारों का बदलने का समय आ गया है, मुस्लिम महिलाओं को अधिकार युद्ध लड़ना ही होगा, परन्तु यह युद्ध बुद्धि से लड़ना होगा। शान्ति से इसका हल खोजने की

आव-यकता है, जीता वही है, जो सदपथ पर चला। अधिकार युद्ध तो छिड़ चुका है, मुस्लिम महिलाएँ सुष्पुत अवस्था में जाग उठी हैं, परन्तु एक बात दृष्टिगत रखनी होगी कि एक औषधि प्रत्येक के लिये लाभदायक नहीं होती, कभी-कभी उसका विपरित परिणाम भी हो सकता है, यही बाद देश, काल, धर्म व सम्प्रदाय पर भी लागू होती है, किसी धर्म व सामाजिक व्यवस्था के लिये जो व्यवस्था महत्वपूर्ण है वह दूसरे समाज के लिये भी शुभफलदायक है, ऐसा आवशयक नहीं है, यूरोपीय समाज व पाशचात्य महिलाओं ने जिस स्वतन्त्रता पर स्वायत्तता को हासिल करना चाहा, उससे उनका पारिवारिक जीवन कुंठाग्रस्त व डाँवडोल हो गया, उनमें स्थायित्व भाव नहीं रहा है, न सुरक्षा भाव इसलिये आज अतिरेक सोच में लिप्त यूरोपीय व पाश्चात्य समाज की महिलाएँ जो चाह रही हैं तथा जिस द्वन्द्व से जूझ रही हैं, वह मुस्लिम महिलाओं या भारत की महिलाओं के लिये उपयोगी व लाभदायक नहीं, अन्धानुकरण दिशाहीन बना देता है और जो इस अन्धानुकरण में लिप्त होगा उसकी स्थिति दो नाव में पैर रखने के समान है न इधर न उधर।

इस प्रकार सामाजिकता के सन्दर्भ में एक सुखी पारिवारिक जीवन की परिकल्पना के परिदृश्य में ही मुस्लिम महिलाओं को अपनी स्वतन्त्रता व स्वायत्तता एवं अधिकार प्राप्ति का हल खोजना होगा, यही उनके लिये उपयुक्त होगा, अन्यथा व्यर्थ का टकराव कलहमूलक हो सकता है, परन्तु कलह व पुरुश से डरकर दमित व शोशित रहना यह भी न्यायोचित नहीं। जब ईशवर व पैगम्बर ने महिलाओं के अस्तित्व को महत्व प्रदान कर उनकी समान सहभागिता व भागीदारी सुचिशिचत की तब कट्टरपन्थी उलेमाओं, दम्भी व अहंकारी पुरुश से क्या डरना। जिस धर्म की महिला जिहाद (धर्म-युद्ध) में भाग ले सकती है, वह आज क्यों सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक अधिकार से वंचित हो।

मुस्लिम महिलाओं को अपनी पहचान अपने कर्मक्षेत्र में करानी है, यदि उनमें थोड़ी सी बुद्धिमता है, तो वह कर्तव्य क्षेत्र में अपनी भूमिका सहज भाव से निभाकर आत्मनिर्भर व स्वावलम्बी बन अपने नारीत्व व शील के साथ समाज में अपनी महत्ता साबित कर सकती हैं। यद्यपि आज भी मुस्लिम महिलाओं के अधिकार सीमित है, परन्तु आशादीप प्रज्जवलित हो प्रकाश को प्रसारित कर रहा है।

मुस्लिम महिलाओं को यह बात भली-भाँति समझनी होगी कि जब तक उनका अर्थिक स्वावलम्बन का आकार वृहत नहीं होगा, तब तक उन्हें समाज में सम्मान नहीं मिलेगा और न ही उनका उत्पीड़न कम होगा। महिलाओं को ज्ञान रूपी प्रकाश प्राप्त कर सूर्य बनना होगा, क्योंकि सूर्य की आभा कोई नकार नहीं सकता, न उसके तेज के समक्ष कोई टिक सकता है। अतः मुस्लिम महिलाओं के लिये बौद्धिक व आर्थिक सफलता आव-यक है, तभी वे बेनजीर, बेगम जिया, शेख हसीना, फातिमा बी, शबाना आजमी,

कुरतुल–एन–हैदर, गजाला अमीन, नाहिद सिद्दीकी, नगमा (न्यूज रीडर आज तक व इंडिया टुडे), बुशरा खानम, ताजदार बाबर, टेनिस जगत का रौशन सितारा सानिया मिर्जा, या वहीदा प्रिज्म बनकर सम्पूर्ण जगत में अपनी आभामंडल को बनाये रखने में सफल होंगी।

मुस्लिम महिलाओं को इतिहास में भी नंजीर लेनी होगी। 12वीं शताब्दी की रजिया सुल्ताना केवल एक शासिका ही नहीं अपितु महान बुद्धिजीवी व कवयित्री भी थी। नूरजहाँ ने अपनी बुद्धिमता से जहाँगीर के डोलते शासन की नैय्या पार लगाई, औरंगजेब की बेटी जीनत बानो बहुत बड़ी चित्रकार व धर्मवेत्ता थीं, ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनका साक्षी हमारा इतिहास है।[14] इन उदाहरणों से प्रगट होता है कि आज से लगभग 15 सदी पूर्व मुस्लिम महिलाएँ अपनी आभा बिखेरकर कान्तिमय प्रकाश फैला सकती थी तो आज की मुस्लिम महिलाएँ किसी भी क्षेत्र में क्यों पीछे रहें। आज कट्टरपन्थ से सम्बद्ध हमारा आलिम वर्ग पर्दानशीं की बात कर मुस्लिम महिलाओं को राजनीति में पदार्पण करने से रोक रहे हैं, यदि इस्लाम में प्रदा प्रथा को कठोरता से लिया गया होता तो क्या पैगम्बर साहब की पहली पत्नी का अपने शहर में व्यापार करना सम्भव था।[15] अब समय आ गया है कि आलिम वर्ग अपनी हठ धर्मिता को त्यागें, क्योंकि यदि अब भी युग व समय के साथ चलने का एहसास नहीं जागा तो निशिचत ही इस्लाम व मुस्लिम समाज कट्टरपन्थ की कब्रगाह तले दबकर मिट जायेगा तथा इस्लाम विरोधी अपने मकसद में कामयाब हो जायेंगे।

इस्लाम में जिस 'हिजाब' की बात की गई उसका पर्याय है आँखों का पर्दा, शर्म–ओ–हया तथा अपने जिस्म के उन हिस्सों का ढकना जिससे जिस्म की नुमाइश होती है, निश्चित ही महिलाओं के नारीत्व व शील के प्रतिरक्षण हेतु हिजाब व शर्म–ओ–हया होनी चाहिए पर पर्दे के नाम पर निकाअ ऐसा न हो जो महिलाओं के जेहन (मस्तिश्क) में नकब डाल दे।

सन्दर्भ

1. मौलाना अब्दुन समद रहमानी–''इस्लाम में औरत का मुकाम'', दीनी बुक डिपो, उर्दू बाजार, नई दिल्ली, पृ. सं. 22
2. मुर्तजा मुत्ताहारी–'दि राइट्स ऑफ वोमेन इन इस्लाम', तेहरान (ईरान), पेज नं. 70–71
3. कुरान–ए–मजीद : पारा–4, सूरानिस्सां, ऐन/3
4. **अ.** यावर, कजलबाश, 'मुस्लिम विधि के सिद्धान्त', मार्डन ला हाउस, लाल बाग लखनऊ, द्विभाशी संस्करण (2005), पृ. सं. 66

   ब. फैजी (109)

5. अल-बुखारी शरीफ (हदीस), 840/2
6. यावर, कजलबाश, 'मुस्लिम विधि के सिद्धान्त,' मार्डन ला हाउस, लाल बाग लखनऊ, द्वितीय संस्करण (2005), पृ.सं. 58।
7. तदैव- पृ.सं. 69
8. यावर, कजलबाश, 'मुस्लिम विधि के सिद्धान्त,' मार्डन ला हाउस, लाल बाग लखनऊ, द्वितीय संस्करण (2005), पृ.सं. 58।
9. यावर, कजलबाश, 'मुस्लिम विधि के सिद्धान्त,' मार्डन ला हाउस, लाल बाग लखनऊ, द्वितीय संस्करण (2005), पृ.सं. 60।
10. मौलाना अब्दुन समद रहमानी-''इस्लाम में औरत का मुकाम'', दीनी बुक डिपो, उर्दू बाजार, नई दिल्ली।
11. यावर, कजलबाश, 'मुस्लिम विधि के सिद्धान्त,' मार्डन ला हाउस, लाल बाग लखनऊ, द्वितीय संस्करण (2005), पृ.सं. 70।
12. तदैव
13. मलिक असगर हाशिमी-'फतवों से आगे उदार होने का समय', लेख दैनिक समाचार पत्र, 'अमर-उजाला', दिनांक 24-08-05।
14. तदैव
15. तदैव